बहाई
जीवन-यथार्थ

बहाई जीवन-यथार्थ

(Hindi Version of 'LIVING THE LIFE')

विश्व न्याय मन्दिर
द्वारा
संकलित



बहाई पब्लिशिंग ट्रस्ट
6 कैनिंग रोड, पोस्ट बाक्स नं॰ 19
नई दिल्ली-110001

प्रथम हिन्दी संस्करण 1974

द्वितीय संस्करण 1997

ISBN : 81-85091-78-1

टाइपसेट : पेजीटेक ग्राफिक्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92

Printed at : Megha Advtg. Ph. 2464091

बहाई जीवन-यथार्थ

"प्रिय स्वामी को कितनी बार यह कहते सुना गया है : यदि प्रत्येक मित्र के धर्म की शिक्षाओं में से केवल एक शिक्षा को भी उसकी गूढ़ता और सच्चाई के साथ, भक्तिभावना, एक निष्ठा, दृढ़ता और निरन्तर उद्योग के साथ आगे बढ़ाने की मन में ठान लें और अपने जीवन के कर्मों व प्रवृत्तियों के द्वारा उसका उदाहरण देने लगे, तो संसार एक दूसरा ही संसार बन जाएगा और धरती का स्वरूप आभा लोक रूपी स्वर्ग की ज्योति से राशियों को प्रतिबिम्बित करने लगेगा। विचार कीजिये कि यदि परम दयालु प्रभु के प्रिय जन अपने व्यक्तिगत जीवन में तथा सामूहिक क्षमताओं द्वारा दिव्य प्रताप की लेखनी से धारा प्रवाह को प्राप्त हुए उपदेशों और आज्ञाओं के अनुसार आचरण करने लगें तो कितने अद्‌भुत परिवर्तन सार्थक हो जावेंगे।" (12 जनवरी, 1923)

"विचार कीजिए कि अन्तिम "वसीयत तथा रिक्त पत्र" में तथा साथ ही पवित्र पाटियों तथा लेखों में ईश्वर के मित्रों को किस हद तक साग्रह कहा गया है कि ईमानदारी, शुभ भावना, सहनशीलता, पवित्रता, ईश्वर के अतिरिक्त सभी वस्तुओं के प्रति विरक्तिभावपूर्वक, जो कुछ इस संसार से सम्बद्ध है उसके प्रति बिलकुल अलगाव रखते हुए तथा

स्वर्गिक गुणों और विलक्षणताओं को वे अपने जीवन से उदाहरण देकर चरितार्थ करें। प्रथम और मुख्य यह है कि अपने हृदय को तथा अपने उद्देश्यों को हर सम्भव युक्ति से पवित्र बनाया जाये, अन्यथा किसी भी प्रकार के ध्येय के लिए जुट पड़ना निरर्थक होगा। यह भी अनिवार्य है कि अन्धानुकरण और पाखंड से दूर रहा जाये क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो समझ और विवेक के धनी प्रत्येक मनुष्य को इनकी दुर्गन्ध का शीघ्र पता चल जाएगा। और यह अनिवार्य है कि मित्रगण परमात्मा के स्मरण-सुमिरन के लिए, उपासना, भक्ति और प्रार्थना के लिए निर्धारित किये गये समयों का हर हालत में पालन करें, क्योंकि इसकी सम्भावना बहुत कम है और बल्कि यह बिलकुल असम्भव है कि कोई भी साहसिक कार्य दिव्य वरदानों और आर्शीवादों के बिना फलीभूत हो सके। इसकी मुश्किल से ही कोई कल्पना कर सकता है कि यथार्थ प्रेम, सत्यनिष्ठा और उद्देश्यों की पवित्रता मनुष्यों की आत्माओं पर कितना विशाल प्रभाव डालते हैं। किन्तु यह विशिष्टताएं उस समय तक नहीं अर्जित की जा सकेंगी जब तक कि प्रत्येक अनुयायी उन्हें प्राप्त करने का दैनिक व नियमित प्रयास नहीं करेगा ! ....

"सर्व प्रथम यह नेक कर्मों और श्रेष्ठ चरित्र की क्षमता से होना चाहिए और इसके बाद व्याख्याओं और तथ्यों के बल को प्रयुक्त करते हुए कि ईश्वर के मित्र संसार को इस तथ्य का साक्षात्कार कराएं कि ईश्वर ने जो वचन दिया था उसे निश्चित रूप में घटित होना अवश्यम्भावी है और वह घटित होना आरम्भ भी हो चुका है, और यह कि ईश्वर के शुभसंवाद स्पष्ट, प्रत्यक्ष और परिपूर्ण हैं। निःसन्देह जब तक कोई ख्यातिमान आत्माएं सेवा के प्रांगण में नहीं उतरेंगी और वे मनुष्यों के समूहों के बीच उजागरता पूर्वक चमक नहीं उठेंगी, इस धर्म के सत्य को उस समय तक विश्व के बुद्धिमान लोगों की आंखों के सामने प्रमाणित करने का कार्य बहुत ही कठिन होगा।

फिर भी, यदि मित्रगण नेक चरित्र और गुणों के साकार रूप बन जाएं तो फिर शब्दों की और वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं रहेगी। स्वयं उनके कर्म ही उनके श्रेष्ठ चरित्र के प्रमाण बन जाएंगे और उनका श्रेष्ठ चरित्र ईश्वर के धर्म के संरक्षण, सुपवित्रता और महानता को सुनिश्चित बना देगा।" (19 दिसम्बर, 1923)

"ईश्वर द्वारा चयन किये गए लोगों के लिए योग्य है कि जिस समाज में वे रह रहे हैं उसकी भ्रष्टावस्था की ओर वे न देखें और न उस चारित्रिक पतन और ओछेपन के प्रमाणों की ओर ही ध्यान दें जो उनके चारों ओर के लोग प्रदर्शित कर रहे हैं। सापेक्ष वैशिष्ट्य तथा उत्तमता मात्र से उन्हें स्वयम को सन्तुष्ट नहीं समझ लेना चाहिए। बल्कि उनके लिए योग्य है कि दिव्य प्रताप की महा लेखनी की मंत्रणाओं और उपदेशों को अपना सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य मान कर वे अपनी दृष्टि को श्रेष्ठतर ऊंचाइयों पर टिकाए रहें। तब यह बात तत्क्षण अनुभव होने लगेगी कि अभी कितने अधिक चरणों से होकर गुजरा जाना बाकी है और अभिलाषित लक्ष्य अभी कितनी दूर है—वह लक्ष्य जो अन्य कुछ नहीं बल्कि स्वयं स्वर्गिक आचार-विचारों और गुणों को साक्षात अपने जीवन में चरितार्थ करना है।" (30 अक्टूबर, 1924)

"अपने प्रिय धर्म के लिए हम में जो प्रेम और भक्तिभावना है उसे ऐसे कर्मों और व्यवहार में रूपान्तरित करना जो मानवता के सर्वोत्तम हितों के लिए सार्थक होते हों, हमारा कर्तव्य और हमारा सौभाग्य है।" (20 नवम्बर, 1924)

"यदि आप 'बहाउल्लाह' और अब्दुल-बहा द्वारा उवाचित वचनों को निःस्वार्थता और सावधानी पूर्वक पढ़ें और उन पर ध्यान केन्द्रित

करें, तो आपको ऐसे ऐसे यथार्थों की प्राप्ति होगी जो अभी तक आपके लिए अज्ञात थे और आप उन समस्याओं की तह तक पहुँचने में क्षम्य हो जाएंगे, जो समस्याएं विश्व के महान विचारविदों को उलझन में डाले हुई हैं।" (30 जनवरी, 1925)

"सबसे महान बात है "जीवन को जिया जाना", बहाई भावना और दिव्य शिक्षाओं से अपने जीवन को इतना ओत-प्रोत कर लेना कि लोग हमारे चरित्र और हमारे कार्य में एक ऐसा आनन्द, एक ऐसी शक्ति, एक ऐसे प्रेम, एक ऐसी पवित्रता, एक ऐसी उज्वलता, एक ऐसी प्रवीणता का साक्षात्कार किये बिना न रह सकें जो हमें सांसारिक वृत्ति के लोगों से विशिष्ट बना ले और लोगों को यह सोचते हुए हैरान कर दे कि हमारे भीतर समाए इस नए जीवन का रहस्य आखिर क्या है। आवश्यक है कि हम पूरी तरह निःस्वार्थ और ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण भक्ति विभोर हो जावें, ताकि हर समय और हर क्षण हमें वही करने की अभिलाषा रहे जो ईश्वर हमसे कराना चाहता हो और हम उसे उसी प्रकार करें जिस प्रकार वह हमसे उसे करवाने की इच्छा रखता हो। यदि हमने ऐसा हृदय से किया तो हमें फिर परस्पर अखण्ड एकता और आत्मीयता प्राप्त हो जाएगी। जहां आत्मीयता की आवश्यकता है वहां सच्ची बहाई भावना की कमी है। जब तक हम अपने जीवनों में इस परिवर्तन का साक्षात्कार नहीं कराएंगे, इस नई शक्ति, इस पारस्परिक स्नेह और आत्मीयता को जब तक हम प्रदर्शित नहीं करेंगे, बहाई शिक्षाएं हमारे लिए बस केवल एक नाम भर की वस्तु रह जाएगी।" (14 फरवरी, 1925)

"यदि हम बहाई अपने बीच में हार्दिक एकता न प्राप्त कर सके तो फिर हम उस मूल उद्देश्य को अनुभव करने में असफल रहे हैं जिसके

लिए 'बाब', 'बहाउल्लाह' और प्रिय स्वामी यहां जिये और यातनाओं का ग्रास बने।"

"इस हार्दिक एकता को प्राप्त करने के लिए 'बहाउल्लाह' और अब्दुल-बहा द्वारा आग्रह पूर्वक बतलाई गई उन अनिवार्य आवश्यकताओं में से हमारी सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि हम अपनी सहज प्रवृत्ति को अपने स्वयं के दोषों और अवगुणों की ओर देखने के लिए बाध्य करें न कि दूसरों की बुराइयों और असफलताओं की ओर। हम में से प्रत्येक एक और केवल एक ही जीवन के लिए जिम्मेदार है और वह है हमारा स्वयं का जीवन। जितना हमारा वह दिव्य दाता सर्वसम्पूर्ण है, उतना सर्वसम्पूर्ण होने से हम में से प्रत्येक बहुत-बहुत दूर है और अपने स्वयं के जीवन और चरित्र को निष्कलंक बनाना एक ऐसा कार्य है जिसके लिए हमारे समुचित ध्यान, समस्त आत्मबल और शक्ति की आवश्यकता है। यदि हम अपनी शक्ति और ध्यान को दूसरों को सुधारने में और उनके दोषों को सुधारने में केन्द्रित किये हैं तो हम बहुमूल्य समय नष्ट कर रहे हैं। हम हल जोतने वाले किसानों के सामान हैं जिनमें से प्रत्येक को अपनी टोली को व्यवस्थित रखना होता है, और अपने हल का संचालन करना होता है, और अपनी हल-रेखा को सीधा रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी दृष्टि अपने लक्ष्य पर रखे और अपने स्वयं के कार्य में एकाग्र रहे। यदि वह कभी इस ओर और कभी दूसरी ओर यह जानने के लिए देखता रहा कि कालू और रामू कैसे कार्य कर रहे हैं और वह उनके हल चलाने की खोट पर ही टीका टिप्पणी करता रहा तो निश्चित है कि उसके स्वयं के ही हल की लीक टेढ़ी-मेढ़ी हो जाएगी।

"बहाई शिक्षाएं और किसी विषय पर इतना अधिक जोर नहीं देती हैं जितना कि दूसरों के दोष निकालने और पीठ पीछे बुराई करने से दूर रहने व अपने स्वयं के दोषों को खोजने व उन्हें निकाल फेंकने तथा अपनी स्वयं की दुर्बलताओं पर काबू रखने हेतु सदैव अधीर रहने की आवश्यकता पर।

"यदि हम 'बहाउल्लाह', अपने प्रिय स्वामी और अपने प्रियधर्म संरक्षक के प्रति निष्ठावान होने का दावा करते हैं तो जरूरी है कि हम उनके प्रति अपना प्रेम इन स्पष्टरूप से दी गई शिक्षाओं के प्रति निष्ठा प्रदर्शित करके व्यक्त करे : वे शब्द नहीं बल्कि कर्म हैं जिनकी वे मांग करते हैं और शिक्षाओं की भावना में जी कर दिखाने में असफल हो जाने पर निष्ठा के आड़म्बरों और चालाकी के हावभावों की कोई भी मात्रा, भले ही वह कितनी ही अधिक क्यों न हो, असफलता का प्रतिकार अथवा उसकी क्षतिपूर्ति नहीं कर सकेगी।" (12 मई, 1925)

"इस प्रश्न के बारे में कि "क्या एक झूठ बोलकर किसी दूसरे झूठ को बचाना उचित है?", वे यह महसूस करते हैं कि हम किसी भी दशा में झूठ न बोलें और साथ ही साथ ऐसे व्यक्ति को कुछ अधिक न्यायसंगत ढंग से सहायता करें। यह बिलकुल ठीक बात है कि उस समय तक बहुत अधिक स्पष्टवादी होना आवश्यक नहीं है जब तक कि वह प्रश्न सीधे हम से ही न किया गया हो।" (29 दिसम्बर, 1967)

"फिर भी हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इस संसार की अभिन्न विशेषता है कष्ट और पीड़ाएं और इन पर विजय प्राप्त कर लेने पर ही हम अपने चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास को प्राप्त कर सकते हैं। जैसा कि अब्दुल-बहा कहते हैं, विषाद हल की लीक

के समान हैं, जितने गहरे पैठेंगे उतनी ही बहुतायत में हमें फलों की प्राप्ति होगी।" (5 नवम्बर, 1931)

"बयान' में 'बाब', ने कहा है कि बीते समय का प्रत्येक धर्म विश्वव्यापी बनने के योग्य था। इस लक्ष्य तक पहुंचने में वे क्यों असफल रहे, इसका एकमात्र कारण था उनके अनुयायियों की अयोग्यता। इसके बाद वे एक निश्चित वचन देते हैं कि "उस महान, जिसे ईश्वर प्रगट करेगा, के धर्म की ऐसी गति नहीं होगी, वह विश्वव्यापी बनेगा और समस्त विश्व के लोगों का उसमें समावेश होगा। इससे यह स्पष्ट है कि हमें अन्त में सफलता अवश्य प्राप्त होगी। किन्तु क्या यह सम्भव नहीं है कि अपनी दुर्बलताओं के कारण, त्याग में अपनी असफलता के कारण और धर्मप्रसार में स्वयं के प्रयत्नों को एकाग्र करने में अपनी उदासीनता के कारण हम अपने उस आदर्श की विजय के साक्षात्कार को प्रत्यक्ष होने से रोक बैठें। और इसका परिणाम क्या होगा? इसका अर्थ यह होगा कि ईश्वर के समक्ष हमें उत्तरदायी समझा जाएगा, कि विश्व संतति स्वेच्छाचार की अपनी इस स्थिति में और अधिक काल तक पड़ी रहेगी, कि युद्धों को इतनी शीघ्रतापूर्वक रोका न जा सकेगा, और मानवीय दुःख और पीड़ाएं अभी और आगे तक चलती रहेंगी।" (20 फरवरी, 1932)

"प्रत्येक युग की कुछ निश्चित आवश्यकताएं होती हैं। उस आरम्भिक दौर में प्रभु के धर्म को बलिदानियों की और ऐसे लोगों की आवश्यकता थी जो अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति के लिए तथा ईश्वर के लिए तथा ईश्वर के द्वारा भेजे गए सन्देश को फैलाने हेतु हर तरह की कठोर यातनाओं और अत्याचारों का सामना कर सकते थे। किन्तु वे दिन अब बीत चुके हैं। प्रभु के धर्म को इस समय उन ऐसे शहीदों

की आवश्यकता नहीं रही है जो अपनी श्रद्धा के लिए जान दे सकते हैं बल्कि उसे अब ऐसे सेवकों की आवश्यकता है जिनमें समस्त विश्व में प्रभु के धर्म का प्रसार और स्थापना करने की आकांक्षा हो। आज के युग में शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए जीना उन आरम्भिक दिनों के बलिदान के समान है। वह भावना ही है जो हमें गतिशीलता प्रदान करती है, वही मुख्य है, न कि ऐसा कर्म जिसके माध्यम से उस भावना की अभिव्यक्ति होती है, और वह भावना है अपनी आत्मा और हृदय के साथ ईश्वर के धर्म की सेवा।" (3 अगस्त, 1932)

"वह यह हार्दिक आशा करते हैं कि, इस त्याग से उस भवन को आकार दिया जा सकेगा और वह भवन इस धरती पर प्रभु के धर्म की भावना और शिक्षाओं का केन्द्र बिन्दु बन सकेगा, और उसमें से मार्गदर्शन का प्रकाश प्रस्फुटित होकर विकसित होगा और इस उदासीन मानवता के हृदय के लिए वह हर्ष और आशा का वाहक बनेगा।

"यदि नबील के इतिहास का आप अध्ययन करें तो आप देखेंगे कि किस प्रकार मित्रों के निरन्तर बलिदानों द्वारा प्रभु के धर्म को पोषण प्राप्त होता रहा। अत्याचारग्रस्त कठिनाइयों, यातनाओं तथा निरन्तर पीड़ाओं के रव में 'बहाउल्लाह' के दिव्य सन्देश की समस्त विश्व में स्थापना सम्पन्न हुई है।" (30 नवम्बर, 1932)

"प्रभु के धर्म की सेवा करने और अपने दूसरे उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए अपने समय का विभाजन करने के सम्बन्ध में शोंगी अफेन्दी ने आपको जो राय दी है वह 'बहाउल्लाह' और अब्दुल-बहा, दोनों के द्वारा, अनेकों मित्रों को भी दी गई थी। किताब-ए-अकदस के दो श्लोकों के बीच यह एक पारस्परिक समझौता है, एक श्लोक में

प्रत्येक बहाई के लिए प्रभु के धर्म के प्रसार एवं विकास के कार्य में सेवा करना अनिवार्य और अपरिहार्य दर्शाया गया है और दूसरे श्लोक में यह अनिवार्य माना गया है कि प्रत्येक आत्मा को किसी न किसी प्रकार के ऐसे व्यवसाय में उद्यमशील रहना चाहिए जो समाज के लिए लाभकर हो। अपने पवित्र अभिलेखों में से एक में 'बहाउल्लाह' कहते हैं कि आज के युग में विरक्ति की सबसे श्रेष्ठ मिसाल है किसी व्यवसाय को अपनाना और आत्मनिर्भर बनना। अतएव एक अच्छा बहाई वह है जो अपने जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित कर लेता है कि वह अपने समय को अपनी पार्थिव आवश्यकताओं की पूर्ति और साथ ही प्रभु के धर्म की सेवा के लिए, अर्थात दोनों कार्यों के लिए जुटा सके।" (21 फरवरी, 1933)

"मैं आपको यह बतलाने की आवश्यकता नहीं समझता हूं कि वे (धर्म-संरक्षक) इस बात से कितने शोक सन्तप्त हैं कि बहाई गोष्ठियों में और खास तौर पर वार्षिक अधिवेशन जैसे महत्वपूर्ण सम्मेलन में विरोधी शक्तियों का कितना अधिक बोल बाला व्याप्त है। एकता और आन्तरिक सहयोग भावना के सम्बन्ध में प्रिय स्वामी के बार-बार दुहराए गए वचनों को सावधानी तथा गहराई पूर्वक याद करना पिछले युगों की तुलना में आज कहीं अधिक आवश्यक है। वैमनस्य और कलह, जो स्वार्थ और लालच की अपरिहार्य उपज हैं, से बढ़कर प्रभु के धर्म की भावना के विपरीत अन्य कुछ नहीं है। निर्लेपता और निःस्वार्थ सेवा भावना एक सच्चे अनुयायी का एकमात्र उद्देश्य होना अपेक्षित है। और जब तक मित्रों में से प्रत्येक इस प्रकार के गुणों को आचरण और व्यवहार द्वारा सार्थक एवं चरितार्थ करने में सफल न होगा, तब तक आगामी प्रगति की कोई आशा नहीं की जा सकती। यही वह समय है जब विचारों और कर्मों की समानता की सर्वाधिक आवश्यकता है। यही वह

समय है जब ईश्वर का धर्म विकास के नए चरण में प्रविष्ट हो रहा है, जब कि एक लड़खड़ाती हुई सभ्यता के हाहाकारों के बीच इसका प्रशासन शनैः शनैः सुदृढ़ता को प्राप्त हो रहा है, कि मित्रगण उन आन्तरिक मतभेदों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा लें जिन्हें यदि पूरी तरह मिटा नहीं दिया गया तो वे हमारे कार्य को अपरिहार्य विनाश के घाट उतार बैठेंगे।" (24 सितम्बर, 1933)

"निश्चित रूप में, वे इस तथ्य को बहुत ही खेदजनक समझते हैं कि आपके देश की सर्वोच्च प्रशासनिक संस्था के प्रतिनिधियों ने ऐसी गलतफहमियों और भेदभावों को इतना बड़ा रूप लेने दिया है, विशेषतः जब कि प्रिय स्वामी के स्वर्गवास के तुरन्त बाद से ही असंख्य पत्रों के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्था के प्रत्येक एवं सभी कानूनों और सिद्धान्तों का स्पष्ट एवं दृढ़ रूप में उनके द्वारा वर्णन किया जा चुका है। इस प्रकार की कठिनाइयां, यदि उन्हें तुरन्त एवं पूरी शक्ति के साथ न रोका गया तो वे प्रभु के धर्म की संस्थान के लिए अवर्णनीय रूप में हानिकारक सिद्ध होंगे, और सम्भव हैं कि न केवल उसके प्रभाव को बल्कि साथ ही साथ उसकी प्रभावपूर्णता को भी वे शिथिल कर देंगे। यदि गहराई के साथ और शान्तिपूर्वक इन सभी संकटों और विवादों का निरीक्षण किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इनकी उत्पत्ति स्वार्थपरता और अहंवाद की भावनाओं से होती है और जब तक इन्हें पूरी तरह काबू न कर लिया जाएगा तब तक प्रभु के धर्म के प्रशासन तंत्र की प्रगति और कार्यशीलता की प्रभावपूर्णता की कुछ भी आशा नहीं की जा सकती है।" (9 मई, 1934)

"एक ओर जहां वे (धर्मसंरक्षक) आपको साहसपूर्वक आपके मार्ग पर खड़ी उन अनेक बाधाओं का सामना करने व उन पर काबू पाने का आग्रह करना चाहेंगे वहां वे आपको यह राय भी देना चाहेंगे कि

असफलता की स्थिति में, और भले ही आप पर कुछ भी क्यों न आन पड़े, आप ईश्वर की इच्छा के प्रति प्रखरतापूर्वक आश्वस्त एवं समर्पित रहें। हम पर आन पड़ने वाली पीड़ाएं, परीक्षाएं और कसौटियां कभी कभी छिपे हुए वरदानों के रूप में आती हैं क्योंकि वे हमें ईश्वर पर और अधिक विश्वास और श्रद्धा रखने की शिक्षा देती हैं और हमें उस प्रभु के और निकट लाती हैं।" (28 अप्रैल, 1936)

"बहाउल्लाह" ने क्या हमें यह आश्वासन नहीं प्रदान किया है कि कष्ट और पीड़ाएं भेष बदल कर आने वाली कृपाएं हैं, कि उनके माध्यम से हमारी भीतर की आध्यात्मिक शक्तियां, स्फूर्ति, पवित्रता, और उत्थान प्राप्त करती हैं? तथापि, आश्वस्त रहें और विश्वास रखें कि आपकी पार्थिव कठिनाइयां प्रभु के धर्म के लिए आपके कार्यकलापों में बाधा डालने से कहीं दूर रहते हुए आपके हृदय में एक ऐसी शक्तिशाली प्रेरणा शक्ति का संचार कर देंगी कि जिससे युक्त होकर आप और भी अधिक अच्छी तरह उसकी सेवा तथा उसके हितों का विकास कर सकेंगे।" (22 नवम्बर, 1963)

"निजी प्रयास प्रभु के धर्म को पहचानने और उसे स्वीकार किये जाने के लिए निश्चय ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। दिव्य अनुग्रह की मात्रा भले ही कितनी विशाल क्यों न हो, जब तक उसे व्यक्तिगत, एकनिष्ट और विवेकपूर्ण प्रयास के द्वारा अनुपूर्त नहीं किया जाएगा वह पूरी तरह प्रभावप्रद नहीं हो पाएगा तथा किसी तरह के वास्तविक और स्थायी लाभ वाला नहीं बन पाएगा।" (27 फरवरी, 1938)

"इस प्रकार की बाधाएं (अर्थात बीमारी और बाह्य कठिनाइयां), भले ही वे पहले कितनी ही गम्भीर और दुस्तर क्यों न दीख पड़ें,

प्रार्थना और संकल्प तथा निरन्तर प्रयास के संयुक्त एवं एकनिष्ठ शक्ति के माध्यम से उन्हें सप्रभाव दूर किया जा सकता है और उन्हें दूर किया ही जाना चाहिए। क्योंकि 'बहाउल्लाह' और अब्दुल-बहा, दोनों ने ही हमें क्या बार बार यह विश्वास नहीं दिलाया है कि जो उनके नाम पर वीरता तथा आत्मविश्वासपूर्वक उद्यम करेंगे, उन्हें अजेयता के दिव्य एवं अदृश्य लश्कर सदैव शक्ति और सहायता से युक्त करते रहेंगे ? इस आश्वासन से आपको अपनी किसी प्रकार की अयोग्यता की, सेवा करने में अपनी किसी अक्षमता की और अपनी किसी भी बाह्य अथवा आन्तरिक असमर्थताओं की उस भावना को वश में करने की क्षमता निश्चित रूप में प्राप्त होनी चाहिए जिनसे प्रभु के धर्म की सेवा में आपके उद्यमों को दुर्बल बनने का खतरा हो। इसलिए आपको उठ खड़े होना चाहिए और आनन्द तथा आत्मविश्वास से गद्-गद् हृदय के साथ अपने धर्म के और अधिक व्यापक प्रसार और उसके और अधिक गहन सुदृढ़ीकरण की दिशा में आपको अपनी क्षमता के अनुसार यथासाध्य योगदान देने हेतु प्रस्तुत हो जाना चाहिए।

"आप सेवा का जो भी विशेष क्षेत्र चुने, भले ही वह ज्ञान प्रसार का क्षेत्र हो या प्रशासनिक व्यवस्था का, आपके लिए सबसे अधिक आवश्यक है अथक प्रयत्न करते रहना और अपनी सीमितता को, अपने उत्साह को निरुत्साहित न करने देना तथा हर्ष तथा सक्रियतापूर्वक सेवाएं समर्पित करते रहने में बाधा न पड़ने देना।" (6 फरवरी, 1939)

"जितनी ही अधिक आपकी परीक्षाएं और आपदाएं होंगी उतना ही अधिक दृढ़तापूर्वक प्रभु के धर्म के प्रति आपके लगाव और भक्ति भावना में वृद्धि होगी। क्योंकि एकमात्र बार बार आने वाले अत्यधिक कष्टों और परीक्षाओं के माध्यम से ही ईश्वर अपने सेवकों की परीक्षा लेता है और

इसलिए इन्हें उनको छिपे हुए आशीर्वादों और ऐसे सुअवसरों के रूप में देखना चाहिए जिनसे दिव्य इच्छा और उद्देश्य के प्रति वे और अधिक विस्तृत जागरूकता प्राप्त कर सकते हैं।" (23 फरवरी, 1939)

"चरित्र निर्माण के लिए......... द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला पाठ्यक्रम, प्रभु के धर्म के संरक्षक यह अनुभव करते हैं कि यह खास तौर पर महत्वपूर्ण है और इसे वांछित समर्थन दिया जाना तथा सावधानी और गहराई पूर्वक उसका अध्ययन किया जाना अपेक्षित है, विशेष रूप से शिविर में उपस्थित युवा अनुयायियों के द्वारा। बहाई चरित्र के ये मापदण्ड जिन्हें वे "एडवैन्ट ऑफ डिवाइन जस्टिस" नामक अपने विगत सार्विक सन्देश-पत्र में नियत कर चुके हैं और जिन्हें धारण करना और विकसित करना प्रत्येक निष्ठावान एवं शुद्ध हृदयी अनुयायी का सर्वप्रिय कर्तव्य होना जरूरी है, गम्भीरतापूर्वक अध्ययन और मनन किया जाना अपेक्षित है और इस वर्ष के अन्तर्गत अमरीका के तीनों बहाई ग्रीष्मकालीन शिविरों के कार्यक्रमों में इसे मुख्य विषय-वस्तु होना जरूरी है।" (20 मई, 1939)

"........... के बहाई समाज में व्याप्त असन्तोष पूर्ण हालातों के बारे में आपने शिकायत की है, धर्म संरक्षक प्रभु-धर्म की उस स्थान पर चल रही स्थिति से पूरी तरह अवगत हैं, और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि प्रभु के धर्म के सम्मुख जो रुकावटें हैं उनकी प्रकृति भले ही कुछ भी क्यों न हो, उन पर अन्त में विजय प्राप्त कर ली जाएगी। आपको किसी भी परिस्थिति में हतोत्साहित नहीं होना चाहिए, और ऐसी कठिनाइयों को, भले ही वे किन्हीं सदस्यों के बुरे आचरण या अयोग्यता और संकुचित दृष्टिकोण के कारण ही भला क्यों न पैदा हुई हों, प्रभु के धर्म के प्रति आपकी मूल निष्ठा और भक्तिभावना इतनी प्रबल होनी चाहिए कि आप

उनसे विचलित न होने पावें। निश्चय ही, अनुयायियों को, वे भले ही शिक्षकों के रूप में या प्रशासकों के रूप में कितनी ही अधिक योग्यता रखने वाले क्यों न हों और चाहे उनके बौद्धिक और आध्यात्मिक गुण कितने ही श्रेष्ठ क्यों न हों, उन्हें ऐसा मापदण्ड कदापि नहीं माना जाये कि जिससे प्रभु के धर्म के दिव्य अधिकार और उद्देश्य को आंका जा सके। स्वयं वे शिक्षाएं तथा स्वयं प्रभु के धर्म के संस्थापकों के पावन जीवन ही ऐसे मापदंड हैं जिनकी ओर अनुयायियों को मार्गदर्शन एवं प्रेरणा प्राप्ति के लिए उन्मुख रहना चाहिए और दृढ़तापूर्वक एकमात्र ऐसा ही सत्यसंगत आचरण रखने से वे स्थायी और अटल आधार पर 'बहाउल्लाह' के प्रति अपनी निष्ठा को स्थापित कर सकने की उम्मीद रख सकते हैं। इसलिए आपको चाहिए कि आप साहस रखें और अपलक सावधानी व सतत प्रयासों के साथ दिव्य आदेश के क्रमिक विस्तार में अपनी भूमिकाओं को पूरी मात्रा में निभाने की उत्कट लगन रखें।"

(23 अगस्त, 1939)

"ये निश्चय ही वे दिन हैं जिनके अन्तर्गत अनुयायियों की ओर से शौर्य के साक्षात्कार की आवश्यकता है। आत्मत्याग, साहस, अटल आशा और आत्मविश्वास ऐसी विशिष्टताएं हैं जिन्हें उनको प्रदर्शित करना है, क्योंकि यही वे गुण हैं जो जनता के ध्यान को बिलकुल बांध सकते हैं और उन्हें यह जानने के लिए प्रेरित कर सकते हैं कि इतने हाहाकारमय तथा आकुल-व्याकुल संसार में इन लोगों को इतना आश्वस्त रखने, इतना विश्वासपूर्ण बनाने और इतना अधिक आस्थावान रखने वाली आखिर वह क्या चीज है? ज्यों ज्यों समय बीतता चलेगा त्यों त्यों बहाइयों की गुणवानता वृद्धि को प्राप्त होती हुई उनके सहनागरिकों के ध्यान को पूरी तरह वश में कर लेगी। मानवता के हृदय के चीथड़े उड़ाती हुई घृणा और विरोध के भावों से

बिलकुल दूर रहकर दिखावें और अपने आचरण तथा वचन द्वारा वे समस्त मानवता के भावी शान्तिपूर्ण ऐक्य के प्रति अपने अटूट विश्वास का साक्षात्कार करावें।" (26 अक्टूबर, 1941)

"हमें सदैव अपने आगे देखना चाहिए और भविष्य में वह सब कर दिखाने की अभिलाषा रखनी चाहिए जो हम अपने अतीत में नहीं कर सके थे। असफलताएं, परीक्षाएं और कसौटियां, यदि हम उनका यथार्थ उपयोग करें, तो हमारी आत्माओं को निर्मल बनाने तथा हमारे चरित्र को सबल बनाने का साधन बन सकती हैं और हमें वे सेवा की श्रेष्ठतर ऊंचाइयों तक उठने की शक्ति प्रदान कर सकती हैं।" (14 दिसम्बर, 1941)

"उन मुद्दों के बारे में, जिन्हें आपने अपने पत्र में उठाया है : अहंकार को पूर्ण एवं सम्पूर्ण रूप से मिटा देना पूर्णता होगी—जिसे कि मानव सम्पूर्ण मात्रा में कमी प्राप्त नहीं कर सकता—किन्तु अहंकार को अधिक से अधिक मनुष्य की उजागर आत्मा के अधीनस्थ रखा जा सकता है और रखा जाना चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति का यही उपलक्ष्य है।" (19 दिसम्बर, 1941)

"श्री......... की अपील के सन्दर्भ में : प्रभु के धर्म के संरक्षक यह अनुभव करते हैं कि इस विषय पर सबसे उत्तम मार्ग यह है कि दोनों सम्बद्ध अनुयायियों से कहा जाए कि वे एक दूसरे को क्षमा कर दें और उस समूचे विषय को भुला दें। वे नहीं चाहते कि मित्रों के द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध बहाई मुकदमा चलाने की एक प्रकार की आदत ही बना ली जाए। मनुष्यमात्र के प्रति आज के युग में उनके उत्तरदायित्व अत्यन्त ही पवित्र और आवश्यक हैं जब कि प्रभु का धर्म अभी इस समय अपने स्वतन्त्र होने के पक्ष को फैलाने और उसे मजबूत करने में प्रयत्नशील है,

एक ऐसे समय में अपना और उन (धर्मसंरक्षक) का बहुमूल्य समय इस प्रकार नष्ट करना उनके लिए उचित नहीं है। इसलिए उनसे कहें कि वे एक हो जायें, अतीत को भूल जावें और इस प्रकार सेवा करें जैसे पहले उन्होंने कभी नहीं की थी।" (26 दिसम्बर, 1941)

"यह सच है कि अनुयायियों ने आवश्यकता की घड़ी में शक्ति और सान्त्वना के लिए परस्पर एक दूसरे के प्रेम के वशीभूत हो जाना अभी पूरी तरह नहीं सीखा है। प्रभु का धर्म अपूर्व शक्तियों से युक्त है, और यदि भक्त गण उसमें से अधिक की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं तो इसका कारण यह है कि प्रभु के धर्म के द्वारा संचारित प्रेम, बल और समता की इन अत्यन्त सशक्त शक्तियों को पूरी तरह अपनी ओर खींच लेना वे अभी नहीं सीख पाए हैं।"

"वे यह राय देना चाहेंगे कि आप अपने मित्र.........को अभी फिलहाल अपने हाल पर छोड़ दें और उसके लिए प्रार्थना करें। क्योंकि इस समय वह आपकी सहायता नहीं चाहती हैं, आप उसे केवल आन्तरिक रूप में ही मदद दे सकते हैं।"

"आपने प्रभु के धर्म के लिए अनेक अनूठी सेवाएं समर्पित की है और आप अभी भी ऐसा ही कर रहे हैं और यही आपके लिए सबसे महान आश्वासन होना अपेक्षित है।" (8 मई, 1942)

"मित्रों के लिए बिलकुल आवश्यक है कि वे एक दूसरे के प्रति सहनशील बनें और यह अनुभव करें कि प्रभु का धर्म अभी भी शैशव की स्थिति में है और इसकी संस्थानें अभी परिपूर्णता पूर्वक कार्य नहीं कर रही हैं। जितना अधिक धैर्य रहेगा और अनुयायियों द्वारा एक दूसरे

के और उनकी त्रुटियों के प्रति जितनी अधिक सप्रेम सहमति और सहनशीलता प्रकट की जाएगी, समग्र बहाई समाज की आम तौर पर, उतनी ही अधिक प्रगति होगी।" (27 फरवरी, 1943)

"हमें अपनी खामियों को अनुभव करना चाहिए और जो बातें दुर्भाग्यवश कन्वेन्शनों, सम्मेलनों और कमेटियों में घटित होती हैं उनके कारण अपने आपको अत्यधिक चिन्तित नहीं होने देना चाहिए। ऐसी बातें बिलकुल सतही होती हैं और समय आने पर उनकी निरर्थकता प्रत्यक्ष हो जाएगी।" (17 मार्च, 1943)

"हममें से सभी समान रूप में सेवाएं करने की क्षमता नहीं रखते, किन्तु वह एकमात्र मार्ग जिसे प्रत्येक बहाई प्रभु के धर्म का प्रसार करने के लिए अपना सकता है, वह है उदाहरण का मार्ग। यह लोगों के हृदयों को इतनी अधिक गहराई तक प्रभावित कर देता है कि जितनी गहराई तक प्रभाव करने की शब्दों से कभी नहीं बन सकती।

"जो स्नेह हम दूसरों के प्रति प्रदर्शित करते हैं, उन्हें मदद देने के लिए जो आतिथ्य, संवेदना और सहानुभूति हम प्रदर्शित करते हैं, प्रभु धर्म का ये सर्वोत्तम प्रचार हैं। हमारे जीवनों में जब वे इन चीजों का दर्शन करेंगे तो वे चाहेंगे कि उसके बारे में सुनें।" (14 अक्टूबर, 1943)

"उन्हें यह सुनकर बहुत हर्ष हुआ है कि कन्वेन्शन में इतनी अधिक उपस्थिति थी तथा अनुयायी उत्साह से भरे हुए तथा एकता में बद्ध थे। प्रभु धर्म की........में जो सबसे बड़ी आवश्यकता है वह यह है कि मित्रगण एक हो जायें, और वास्तविक रूप में गहराई के साथ इस यथार्थ के प्रति जागरूक हो जावें कि वे एक आध्यात्मिक परिवार हैं, उन बन्धनों से परस्पर बंधे हुए हैं जो ऐसे पार्थिव बन्धनों से कहीं अधिक पवित्र और

शाश्वत हैं जो लोगों को एक ही परिवार का अंगभूत बना देते हैं। यदि मित्रगण सभी व्यक्तिगत भेदभावों को भुला दें और 'बहाउल्लाह' के नाम पर अपने हृदयों को एक दूसरे के प्रति महान प्यार के लिए खोल दें तो पाएंगे कि उनकी शक्तियां विशाल रूप में बढ़ गई हैं, वे जनता के हृदयों को आकर्षित करने लगेंगे और.......में वे पवित्र धर्म के अद्‌भुत विकास का साक्षात्कार करने लगेंगे। राष्ट्रीय आध्यात्मिक सभा को चाहिए कि वह अपनी समस्त शक्ति जुटा कर अनुयायियों के मध्य एकता की भावना को दृढ़तापूर्वक बनाएं और उन्हें दिव्य प्रशासन में प्रशिक्षित करें क्योंकि यह वह मार्ग है जिससे होकर बढ़ते हुए उनके सामाजिक जीवन को प्रवाहमान होना आवश्यक है और जो, उचित रूप में समझे जाने पर तथा उस पर अपेक्षित अमल किये जाने पर, प्रभु के धर्म के कार्य को अत्यन्त ही वेगपूर्वक आगे बढ़ने की क्षमता प्रदान कर देगा।" (26 अक्टूबर, 1943)

"जीवन का समस्त संघर्ष अन्ततः व्यक्ति के भीतर ही निहित है। कितनी भी सुदृढ़ व्यवस्था क्यों न हो, भीतरी समस्याओं को वह हल नहीं कर सकती और न निर्णायक क्षणों में विजय या हार को स्थिति के आग्रह के अनुसार बनाने या रोकने में ही वह समर्थ हो सकती है। विशेष कर ऐसे मौजूदा अवसरों पर, जबकि विशाल शक्तियों के हाथों जनता संसार में बड़े पैमाने पर तितर बितर हो रही है, हमें कुछ ऐसे दुर्बल लोग भी दीख पड़ते हैं जो आश्चर्यजनक रूप में सहसा सबल हो उठते हैं और सबल लोग असफल हो जाते हैं—हम केवल प्रेमपूर्ण परामर्श द्वारा, जैसा कि आपकी कमेटी ने किया है, प्रयत्न कर सकते हैं कि अनुयायी के भीतर ऐसी सक्रियता और प्रेरणा उत्पन्न करें जो प्रभु धर्म के सर्वोच्च हित में हो। क्योंकि प्रत्यक्षतः प्रभु-धर्म के लिए कोई

बुरी बात व्यक्तिगत बहाई के लिए सर्वाधिक उत्तम कभी नहीं हो सकती है।" (17 दिसम्बर, 1943)

"संसार को आज जिस वस्तु की आवश्यकता है वह है बहाई भावना की आवश्यकता। लोग प्रेम के लिए तरस रहे हैं एवं एक ऊंचे आदर्श की ओर अभिमुख होने के लिए और साथ ही अपनी अनेकों गम्भीर समस्याओं के निराकरण के लिए वे इस समय अधीर हैं। बहाइयों को चाहिए कि जिन लोगों के सम्पर्क में वे आवें उन पर वे प्रभु-धर्म की परितप्त और प्रेमपूर्ण भावना बरसाएं, और यह विधि शिक्षाओं का ज्ञान देने के साथ मिलकर हृदय से सत्य तक पैठने की आकांक्षा रखने वाले लोगों को प्रभु के धर्म की ओर आकर्षित करने से कभी नहीं चूकेगी।" (18 दिसम्बर, 1943)

"आपके इस प्रश्न के सम्बन्ध में कि मित्रों (बहाइयों) में और भी अधिक एकता होनी चाहिए, निःसन्देह यह सत्य है और धर्म संरक्षक यह अनुभव करते हैं कि इसे विकसित करने का सबसे उत्तम मार्ग यह है कि स्वयं बहाइयों को कक्षाओं के माध्यम से और धर्म के सिद्धान्तों के द्वारा ज्ञानवर्द्धन किया जाये कि ईश्वर-प्रेम और परिणामतः मानव-प्रेम सब धर्मों का मूल आधार है और इस मान्यता में हमारा धर्म भी सन्निहित है। प्रेम की अधिकतम मात्रा और अधिक एकता उत्पन्न करेगी, क्योंकि यह प्रेम लोगों को एक दूसरे के साथ सम्बन्ध निभाने, धैर्यवान एवं क्षमाशील बनने की शक्ति प्रदान करता है।" (7 जुलाई, 1944)

"वह यह आशा करते हैं कि आप आचरण तथा निष्ठा में बहाइयों के रूप में विकास प्राप्त करेंगे। 'बहाउल्लाह' का समग्र उद्देश्य यह है कि हम एक नए प्रकार के मानव बनें, जो सत्यशील, दयाभावी, कुशाग्र बुद्धिवाले,

निष्ठावान और आदर्शवादी हों, जो उनके उन महान कानूनों के अनुसार जीवन जिएं, जो मनुष्य के विकास के इस नए युग के लिए निधार्रित किये गये हैं। खुद को बहाई नाम से सम्बोधित करना भर पर्याप्त नहीं है। बहाई जीवन को चरितार्थ करते हुए हमारी अन्तरतम काया को महान और प्रकाशवान बन जाना जरूरी है।" (25 अगस्त, 1944)

"प्रभु के धर्म के प्रति उग्र लगाव के साथ ही उनकी अपरिपक्वता के फलस्वरूप बहुत सी गलतफहमियां पैदा हो जाती हैं। इसलिए हमारे लिए एक दूसरे के प्रति अत्यन्त ही शांत और प्रेमपूर्ण रहना और बहाई परिवार में एकता स्थपित करने की कोशिश करना अपेक्षित है। वे यह महसूस करते हैं कि वह अन्तर......जिसके सम्बन्ध में आपने अपने पत्र में लिखा है, उक्त कारणों की उपज हैं, न कि प्रभु-धर्म के प्रति शत्रुता या अश्रद्धा के कारण।"

"वह आप से यह आग्रह करते हैं कि आप समाज में और अधिक प्रगाढ़ प्रेम और एकरूपता उत्पन्न करने के भरसक प्रयत्न करें और परम पावन प्रभु धर्म की शिक्षाओं के प्रसार के अनथक प्रयत्न करें।" (17 अक्टूबर, 1944)

आपके समाचार प्राप्त करके उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई है और यह जानकर भी कि इस वर्ष ग्रीन-एकर एक ऐसे प्रेम और समानता के भाव से ओत-प्रोत हो गया था कि उसके कारण अनेक नई आत्माओं को प्रभु के धर्म में दृढ़ बनने की प्रेरणा मिली। अनुयायियों के बीच का यह प्रेम वह चुम्बक है, जो सबसे ऊपर बैठ कर हृदयों को आकर्षित करेगा और नई आत्माओं को प्रभु के धर्म में लाएगा। संसार के किसी प्रकार के समझौते की नहीं बल्कि एक ऊंचे जगमगाते हुए आदर्श की खोज है।

अपने जीवन के प्रत्येक स्तर पर मित्रगण जितना अधिक हमारी शिक्षाओं के अनुरूप जीवन जियेंगे, उतना अधिक होगा उनका आकर्षण जो वे अपने घरों के भीतर, अपने व्यापार और अपने सामाजिक समागम में दूसरों के हृदयों पर अंकित कर सकेंगे।"

"उन्हें यह देखकर प्रसन्नता है कि स्वाभाविक रूप में आप, दूसरों के प्रति विश्वास और सद्‌भावना पूर्वक, सब से घुल-मिल रहे हैं और काले लोगों को ज्ञान दे रहे हैं। बहाई जब अपनी शिक्षाओं के अनुरूप जीवन जीते हैं, और जैसा कि उनके लिए अनिवार्य भी है, यद्यपि इससे कुछ लोगों में विरोध की भावना भड़कने की भी सम्भावना है, किन्तु इससे कहीं अधिक यह उन लोगों में प्रशंसा भाव उत्पन्न करेगा जो न्यायप्रिय लोग हैं।" (23 जनवरी, 1945)

"निश्चय ही आज के संसार में हम जब बढ़ते हुए अन्धकार को देखते हैं, हमें पूरी तरह यह अनुभूति होती है कि 'बहाउल्लाह' का दिव्य सन्देश जब तक लोगों के हृदयों तक नहीं पहुंचेगा और उनका कायाकल्प नहीं कर चुकेगा, तब तक भविष्य में कोई शान्ति और कोई आध्यात्मिक प्रगति कदापि सम्भव नहीं होगी।"

"उनकी सतत आशा यह है कि अनुयायी स्वयं को व्यक्तिगत रूप में तथा अपने बहाई सामाजिक जीवन में स्वयं को इस प्रकार संचालित रखेंगे कि वे प्रभु के धर्म के प्रति दूसरों के ध्यान को आकर्षित कर सकें। न केवल यह कि संसार उच्च सिद्धान्तों और आदर्शों के लिए तड़फ रहा है बल्कि उसे एक ऐसे ज्वलन्त उदाहरण की भी महती आवश्यकता है जिसे बहाई प्रस्तुत कर सकते हैं और जो केवल उन्हें ही प्रस्तुत करना है।" (22 फरवरी, 1945)

"संसार में सभी ओर, प्रभु-धर्म के भीतर और बाहर एक ऐसे वास्तविक आध्यात्मिक बोध की बहुत बड़ी आवश्यकता है, जो लोगों के जीवनों को ओत-प्रोत करे और उन्हें दिशा दे। प्रशासनिक विधि की कोई भी मात्रा या नियमों के प्रति किसी भी तरह की निष्ठा, भले ही वह कितनी ही विशाल क्यों न हो, कभी भी उस आत्मिक उत्थान का और उस आध्यात्मिकता का स्थान नहीं ले सकती, जो मानव की मानवीयता का निचोड़ है। उन्हें बहुत खुशी है कि आप इस सन्दर्भ में जोर दे रहे हैं और मित्रों को इस सर्वोच्च आवश्यकता को अनुभव करने में मदद दे रहे हैं।" (25 अप्रैल, 1945)

"........के विषय के बारे में और उस विभेद के बारे में जो मित्रों में से कुछ के बीच विद्यमान प्रतीत हो रहा है.........विश्व की काली शक्तियों को जब बहाई अपने स्वयं के सम्बन्धों के बीच आड़े आने की अनुमति देते हैं, वे गम्भीर रूप में धर्म की प्रगति को आपत्ति में डाल बैठते हैं; अनुयायियों, स्थानीय आध्यत्मिक सभाओं और विशेषकर राष्ट्रीय आंध्यात्मिक सभा का यह सर्वोच्च कर्तव्य है कि वे एकता, सहमति और प्रेमभाव का मित्रों के मध्य विकास करें। सबको तैयार एवं इच्छुक होना चाहिए कि पीड़ा के प्रत्येक व्यक्तिगत भाव को प्रत्येक द्वारा तत्परतापूर्वक एवं स्वेच्छा से, भले ही यह न्यायोचित लगे या अनुचित, प्रभु के धर्म के हित में एक ओर फेंक देना चाहिए, क्योंकि लोग इसे तब तक ग्रहण नहीं करेंगे जब तक कि वे इसके सामाजिक जीवन में वह ताप, प्रेम और एकता को, प्रतिबिम्बित होता हुआ नहीं देख लेंगे, जिसका विश्व में नितान्त अभाव है।" (13 मई, 1945)

"सबसे अधिक आवश्यक है कि बहाई समाज में प्रेम और एकता विद्यमान रहे, क्योंकि संसार की वर्तमान अन्धकारमय स्थिति में यही वह

चीज़ें हैं जिनकी लोगों को अधीरतापूर्ण चाहना है। इस निराश और प्रायः कुन्ठित पीढ़ी के हृदय में आशा का संचार करने के लिए जीवित उदाहरण से विहीन शब्द कभी भी पर्याप्त न होंगे।" (20 अक्टूबर, 1945)

"क्योंकि आपने मार्गदर्शन के लिए उनका आसरा लिया है, वे बिलकुल स्पष्ट रूप में आपको अपना अभिप्राय देंगे। वह यह अनुभव करते हैं कि आप लोगों में इस समय जो प्रतिकूलता व्याप्त है, ...वह प्रभु के धर्म के विस्तार के लिए अत्यन्त घातक है और यह केवल मात्र नए अनुयायियों के उत्साह को भग्न एवं निरूत्साहित करेगा।"

"...........आपको...........अपने व्यक्तिगत असंतोष को भुला देना चाहिए और प्रभु के धर्म, जिसके प्रति, वह भली प्रकार जानते हैं कि आप सब निष्ठापूर्वक श्रद्धा रखते हैं तथा कुरबानी देने के लिए तैयार हैं, की सुरक्षा के लिए एक हो जाना चाहिए।"

"शायद बहाइयों के सामने जो सबसे बड़ी कसौटी आ सकती है वह एक दूसरे की ओर से ही आ सकती है, किन्तु प्रिय स्वामी (महात्मा अब्दुल-बहा) के लिए उन्हें चाहिए कि वे एक दूसरे के दोषों को देखा अनदेखा कर दें और अपने अभद्र शब्दों के लिए परस्पर क्षमा याचना करें, क्षमा करदें, और भूल जावें। वे अत्यन्त आग्रहपूर्वक आपसे यही मार्ग अपनाने को कहते हैं।"

"वह यह भी अनुभव करते हैं कि आप और ....गोष्ठियों तथा सहभोज-सभाओं में अनुपस्थित न रहें......पोर्ट ऐडीलेड में अब आपके यहां नौजवान बहाइयों की एक उत्साही संख्या भी हो गई है और आपको चाहिए कि आप बहाई अनुशासन और एकताभाव का एक

मजबूत उदाहरण उन्हें दिखलाएं जो सर्वश्रेष्ठ नाम के समाज में व्याप्त हो सके और यह आवश्यक है।" (18 दिसम्बर, 1945)

"आप 'आध्यात्मिक अजीर्ण' के बारे में पूछते हैं, बहाई को बहुमुखी प्रतिभावाला होना चाहिए, सौम्य और संतुलित, मानसिक रूप में भी और आध्यात्मिक रूप में भी। हमें ऐसा प्रभाव नहीं छोड़ना चाहिए कि हम धर्मान्ध हैं किन्तु साथ ही हमें अपने सिद्धान्तों के अनुरूप अपना आचरण रखना चाहिए।" (12 मार्च, 1946)

"आप निश्चिन्त रहें कि वे श्रद्धालुओं की एकता के लिए प्रार्थना करेंगे.....यह बहुत बड़ा महत्व रखता है, और इसी पर वहां पर प्रभु के धर्म का विकास तथा ज्ञान-प्रसार के प्रत्येक प्रयत्न की सफलता निर्भर है। मित्रों को सर्वत्र जिस चीज़ की आवश्यकता है—वह है एक दूसरे के लिए बढ़ता हुआ प्रेम और यह प्राप्त किया जा सकता है। 'बहाउल्लाह' के प्रति अपने प्रेम को और अधिक प्रबल बना कर, क्योंकि यदि हम उस प्रभु रूप से पर्याप्त मात्रा में हार्दिक प्यार करेंगे तो हम उस महान के धर्म को नीचा दिखाने के लिए कभी भी अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को सामने नहीं आने देंगे, हम प्रभु के धर्म के लिए एक दूसरे के लिए स्वेच्छा से कुर्बानी देने लगेंगे, और ऐसे बनेंगे जैसे प्रिय स्वामी ने कहा था, अनेक देहों में एक आत्मा।" (5 सितम्बर, 1946)

"वे हृदय से आपके साथ सहमत हैं कि जब तक हम शिक्षाओं पर आचरण नहीं करेंगे तब तक सम्भवतया हम प्रभु के धर्म के विकास की उम्मीद नहीं कर सकते, क्योंकि सभी धर्मों का मूल उद्देश्य हमारे स्वयं के धर्म सहित, मनुष्य को ईश्वर के निकट लाना है और उसका चरित्र बदलना है, जो कि सर्वाधिक महत्व रखता है। दिव्य

शिक्षाओं के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं पर साधरणतः अधिक बल दिया जाता है किन्तु इनके नैतिक पक्ष के बारे में जितना भी कहा जाए कम है।"

(6 सितम्बर, 1946)

"इस पर कि आपने 'बहाई चरित्र' पर अध्ययन क्रम रखा था उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई है, क्योंकि वे यह मानते हैं कि आज के युग के अनुयायियों के लिए जो सर्वाधिक बड़ा कर्तव्य है वह है बहाई जीवन जीना। आपको अपने उत्तम नैतिक व्यवहार, नम्रता, चरित्र-बल और सदाचार द्वारा यह प्रदर्शित करना है कि हमारा धर्म मात्र शब्दों का नहीं है बल्कि वह अपने अनुयायियों के हृदय और चरित्र में वास्तविक परिवर्तन लाता है।"

(19 सितम्बर, 1946)

"वे यह महसूस करते हैं कि विशेषतया युवक-युवतियों को निरन्तर एवं संकल्पपूर्वक बहाई जीवन के प्रमाण प्रस्तुत करने में भरसक प्रयत्न अवश्य करने चाहिए। अपने चारों ओर के संसार में हमें चारित्रिक ह्रास, अश्लीलता, अभद्रता और असभ्यता देखने को मिल रही है, तरुण बहाइयों को इन सबके बिलकुल विपरीत होना चाहिए, और अपनी पवित्रता, सत्यशीलता, शालीनता, सहनशीलता और भद्र आचरण के द्वारा दूसरों को, भले ही वे युवा हों या वृद्ध, प्रभु के धर्म की ओर आकर्षित करना चाहिए। संसार शब्दों को सुन सुन कर थक चुका है, उसे उदाहरण चाहिए और यह बहाई तरुणों पर निर्भर है कि वे उदाहरण प्रस्तुत करें।"

(19 सितम्बर, 1946)

"मित्रों को हर समय इस तथ्य का ध्यान रहना आवश्यक है कि वे एक प्रकार से ऐसे सैनिक हैं जिन पर हमला हो रहा हो। संसार इस समय आध्यात्मिकता की अत्यन्त ही अन्धकारपूर्ण स्थिति में है, हर

प्रकार की घृणा और भेदभावना नोच नोच कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर रही है। दूसरी ओर, हम लोग इससे विपरीत शक्तियों, अर्थात प्रेम और एकता, शांति और अखंडता की शक्तियों के संरक्षकों के समान हैं और आवश्यक है कि हम सदैव अपनी रक्षा में चाहे व्यक्तिगत बहाइयों के रूप में हों या सभा के रूप में हों अथवा एक समाज के रूप में हों, सजग रहें, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि हमारे माध्यम से ही ये विनाशकारी अभाव सूचक शक्तियां हमारे बीच में घुस पड़ें। दूसरे शब्दों में, हमें अवश्य ही सावधान रहना है क्योंकि ऐसा न हो कि समाज का अन्धकार हमारे कर्मों और भावनाओं में प्रतिबिम्बित होने लगे, कदाचित बिलकुल अबोधावस्था में। एक दूसरे के प्रति हमारा यह प्रेमभाव, यह गहन बोध कि हम एक नई अंग रचना हैं, एक नवीन विश्व व्यवस्था के उदयवीर हैं, इस अनुभूति द्वारा हमें अपने बहाई जीवन को अनुप्राणित करते रहना चाहिए, और हमें प्रार्थना करना चाहिए कि उस समाज के दूषित वातावरण से हम बचे रहें जो भेदभावों के रोग से बिलकुल आसन्न है।" (5 फरवरी, 1947)

"....में प्रभु धर्म अत्यन्त ही वेगपूर्वक विकसित होता जा रहा है, और जितना ही अधिक इसका प्रचार होगा उतना अधिक जनता का ध्यान उसकी ओर केन्द्रित होगा। यह बात अनुयायियों पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी डाल देती है, क्योंकि अपने मध्य उन्हें प्रेम और एकता के एक ऐसे भाव को प्रदर्शित करना जरूरी है कि दूसरे के हृदयों को मोह लें और उन्हें बड़ी संख्या में प्रभु के धर्म की छत्रछाया में प्रविष्ट होने का उत्साह दें। हमें सदैव याद रखना चाहिए कि दिव्य शिक्षाएं बिलकुल पूर्ण एवं सर्वांगीण हैं और इसका एकमात्र कारण यह है कि अभी तक हमारे सहमानव इनकी विशिष्टता को नहीं स्वीकार कर पाये हैं, वह यह है कि अभी तक जैसा हमें बनना चाहिए और बन सकते हैं। 'बहाउल्लाह'

के सत्य के वैसे निःस्वार्थ और उज्ज्वल दर्पण नहीं बन पाए हैं, हमें लगातार उद्यम करना चाहिए; कि उस प्रभुरूप की शिक्षाओं के हम नमूना बनें।"
(17 फरवरी, 1947)

'व्यक्तिगत बहाइयों के रूप में हमें अपने आचरण को परिमार्जित करने में तथा अपनी इस विश्व व्यवस्था को जो अभी तक भ्रूण-अवस्था में है तथा जिसे अभी तक उचित रूप में नहीं समझा गया है, परिपक्वता की अवस्था तक पहुंचाने के प्रयत्न करने चाहिए; दिव्य योजना की व्यवस्थाओं के अनुसार ईश्वर के दिव्य सन्देश को फैलाने में प्रयत्नशील रहना चाहिए। तुलनात्मक रूप में हमारी संख्या बहुत ही थोड़ी है, और इतने अधिक बहुमूल्य, विलक्षण एवं जिम्मेदारीपूर्ण कार्य को हमें पूरा करना है। इस कार्य में हमें अपनी समग्र क्षमताओं को जुटा देना है।"
(9 मई, 1947)

"व्यक्तिगत अनुयायी के गृह-मोर्चे के ढांचे में मूल इकाई बन जाने पर गृह मोर्चे का पुनवर्द्धन, फैलाव तथा अभिवृद्धि निर्भर है। गृह मोर्चे के कार्यों में जुटे हुए व्यक्तिगत बहाई के द्वारा नित्य और नियमानुसार आत्मशुद्धि और समर्पणभाव की उच्चतम स्थिति तक पहुंचने में जितने ही जीतोड़ प्रयत्न किये जाएंगे, गृह मोर्चे में पायनियरिंग के माध्यम से जितना अधिक सक्रिय अंशदान दिया जाएगा, एकाकी बहाई केन्द्रों, बहाई ग्रुपों व बहाई समाजों की संख्या में जितनी अधिक वृद्धि लाई जाएगी, और परिश्रम, उद्यम और सतत प्रयत्न से प्रतिग्राही आत्माओं को प्रभु के धर्म में दीक्षित किया जाएगा और कर्मठ और हार्दिक समर्थकों की संख्या में वृद्धि लाई जाएगी उतनी ही शीघ्रता से गृह मोर्चे की सीमा से बाहर आरम्भ किये गए विशाल एवं बहुमुखी साहस जहां से अब बहुत दयनीयता से और अधिक जनशक्ति और साधनों की मांग हो रही

है, वहां पर वह आवश्यक समर्थन देना सम्भव हो जाएगा जिसके द्वारा उनका निर्विघ्न विकास सम्पन्न हो सकेगा और उसके फल शीघ्र प्राप्त हो सकेंगे।" (21 सितम्बर, 1947)

"आपने जो पूछा उसके सन्दर्भ में : 'स्व' के दो अर्थ होते हैं, अथवा बहाई अभिलेखों के दो प्रकार की अभिव्यक्तियों में इस शब्द का उपयोग होता है, एक व्यक्ति—स्वयं 'स्व' जो उस व्यक्ति की पहचान है जिसे ईश्वर ने उत्पन्न किया है। यह वह 'स्व' है जिसका उल्लेख ऐसे स्थलों पर मिलता है जैसे "उसने ईश्वर को जान लिया है जिसने स्वयं को जान लिया है" आदि, आदि; दूसरा 'स्व' है, 'अहं' वह काली पाशविक बपौती जो हम में से प्रत्येक को प्राप्त हुई है, वह निम्न प्रकृति जो स्वार्थपरता, क्रूरता और वासना आदि के एक दानव के रूप में विकसित हो सकती है। यही वह "अहं" है अथवा हमारी प्रकृति का वह पक्ष है जिसके विरुद्ध, संघर्षरत रहना चाहिए, ताकि हम अपने भीतर की आत्मा को सशक्त एवं स्वतन्त्र बना सकें और उसे पूर्णता की स्थिति तक पहुंचाने में सहायता दे सकें।"

"आत्म-बलिदान का अर्थ है इन निम्न प्रकृति और आकांक्षाओं पर अपने ईश्वरीय तथा उच्चत्तर जीवन के पक्षों के हित में अंकुश रखना और अपने उच्चतम अर्थों में आत्म बलिदान का अर्थ है अपनी इच्छा-अभिलाषाओं और सर्वस्व को ईश्वर के प्रति इस विश्वास के साथ समर्पित कर देना कि उस प्रभु की जैसी इच्छा हो वही वह करे। तब वह प्रभु हमारे वास्तविक 'स्व' को पवित्र एवं गौरवशाली बनाता है, उस समय तक जब तक कि वह एक जगमगाती और अद्‌भुत वास्तविकता का रूप न ले ले।" (10 दिसम्बर, 1947)

"भक्ति और आत्मबलिदान की विशिष्टता ही वह तत्व है जिसके द्वारा इस ईश्वरीय धर्म की सेवा में सुफलों की प्राप्ति होती है, न कि साधन, योग्यता या आर्थिक समर्थन के कारण।" (11 मई, 1948)

"प्रायः हमारे लिए कार्य करना, इस कारण कठिन हो जाता है कि हमें जिस प्रकार कार्य करने की आदत पड़ गई है, उससे यह काम भिन्न प्रकार के होते हैं और न इस कारण कि यह कार्य विशेष प्रकार से कठिन हैं। आपके और अन्य बहाइयों के लिए, जो अब वयस्क होकर इस धर्म को स्वीकार करते हैं, उपवास और दैनिक प्रार्थनाओं को समझना और उनका पालन करना, आरम्भ में मुश्किल है किन्तु हमें समझना चाहिए कि यह आज्ञाएं मनुष्य मात्र के लिए 1000 वर्ष के लिए अनिवार्यतः निर्धारित हैं। उन बहाई बालक बालिकाओं के लिए, जो प्रतिदिन इन आज्ञाओं का पालन होते अपने घरों में देखते हैं। वे इतनी तो सहज-स्वाभाविक हैं जितना धर्म-चुस्त ईसाई—लोगों को रविवार की प्रातः गिरजा जाना। यदि यह आज्ञाएं लाभदायक न होतीं तो 'बहाउल्लाह' हमें न देते। हमें उन बालकों की भांति इन नियमों को अपनाना चाहिए, जो इतने समझदार हों कि यह बात समझें कि उनके पिता बुद्धिमान हैं और वे केवल वह (काम) करते हैं जो उनके लिए शुभ है। हमारे लिए इन नियमों का पालन स्वीकार्य होना चाहिए, फिर भले ही प्रारम्भ में इनकी आवश्यकता दिखाई न दे। जैसे जैसे हम इन्हें मानेंगे, वैसे वैसे हम समझते जाएंगे कि इन नियमों द्वारा क्या क्या लाभ प्राप्त हो सकते हैं।" (16 मार्च, 1949)

"अपने बारे में अपने सह अनुयायियों की भावनाओं और व्यवहार की ओर हमें बहुत अधिक नहीं उलझे रहना चाहिए। सबसे अधिक आवश्यक है, प्रेम और एकताभाव को बढ़ाना और हमें जो भी

बुराई मिले उसे देखा अनदेखा कर देना; अतएव मानवीय प्रकृति की दुर्बलताएं तथा किसी व्यक्ति विशेष का रुख या विचित्रता वर्द्धित न होंगी और वह प्रभु धर्म जिसे हम सब प्यार करते हैं, उसके प्रति सामूहिक सेवाओं की तुलना में ऐसी दुर्बलताएं महत्वहीन हो जाएगी।" (19 सितम्बर, 1948)

"......इन दुर्भाग्यों को सहन करते हुए हमें यह याद रखना होगा कि स्वयं ईश्वर के अवतार भी इन चीजों से, जिन्हें मनुष्य झेल रहे हैं भोगे बिना नहीं रह सके थे। वे दुःख, रोग और दर्द से भी परिचित थे। वे अपने आत्मबल से इन सबसे ऊपर ही उठे थे, यही हमें भी करने की कोशिश करनी चाहिए, जब हम पीड़ित हों। इस संसार की यातनाएं बीत जाती हैं, और जो कुछ हमने अपनी आत्माओं को बना दिया है, वह हमारी पूंजी है। इसी पर ध्यान रखना चाहिए—अधिक आध्यात्मिक बनने में, ईश्वर के निकट खिंचे जाने में, भले ही हमारे मानवीय मस्तिष्कों और देहों की कैसी भी दशा क्यों न हो जाये।" (5 अगस्त, 1949)

"आपने कुछ बातों का वर्णन किया है जिन्हें सुनकर उन्हें बहुत दुःख पहुंचा है। उससे कुछ बहाइयों में बहुत अधिक आध्यात्मिक अपरिपक्वता तथा शिक्षाओं के अध्ययन एवं बोध के प्रति अत्यन्त ही चौंका देने वाली कमी का आभास मिलता है। अपने धर्म की चरित्र-निर्माण सम्बन्धी शिक्षाओं के अनुरूप जीवन बिताना 'एम-आर-ए' के द्वारा प्रतिपादित उच्च सिद्धान्तों से, जो भले ही कितने ही सुन्दर और व्यापक क्यों न हों, जीवन बिताने से कहीं अधिक कठिन है। 'बहाउल्लाह' और अब्दुल-बहा के अभिलेखों को हर दूसरा शब्द आचार और आध्यात्मिकता का उपदेश है, शेष सब कुछ केवल ढांचा है, एक प्याला है, जिसमें पवित्र आध्यात्म-मदिरा उंडेल दी जाती है; आत्मा और

कर्म जिसके द्वारा इस आत्मा को अभिव्यक्त किया जाना अनिवार्य है, इनके बिना यह एक निष्प्राण ढांचा मात्र है।"

"जो आप कह रहे हैं उससे वे इस निर्णय पर आते हैं कि मित्रों को या कम से कम उनमें से अनेकों को, आरम्भ में सही ढंग से शिक्षाओं में दीक्षित नहीं किया गया था।"

"निश्चय ही 'एम-आर-ए' के चार सिद्धान्तों पर जोर दिये जाने पर कोई आपत्ति नहीं है—यद्यपि हमारें बहुमूल्य धर्म की कोई भी शिक्षा इन विषयों के भीतर कहीं अधिक गहराईपूर्वक बैठेगी और उन्हें अभिवृद्धि देगी।"

"जब हम यह अनुभव करते हैं कि 'बहाउल्लाह' ने यह कहा है कि व्याभिचार उस दूसरे जीवन में आत्मा की प्रगति को रोकता है— कितनी दुःखद बात है यह और यह कि मद्यपान मानसिक शक्तियों का नाश कर डालता है—और उसका इस सीमा तक निषेध है कि उसके निकट तक न जाना चाहिये, हम यह देखते हैं कि हमारी शिक्षाएं इन विषयों पर कितनी अधिक स्पष्ट हैं।"

"आपको उचित नहीं है कि हमारे धर्म को, केवल एक ऐसे समाज, जिसे अभी तक बहाई शिक्षाओं का अध्ययन और पालन करने की स्पष्ट रूप से आवश्यकता है, को देख कर ही आंक लें। मानवीय दुर्बलताएं एवं विचित्रताएं एक बहुत बड़ी कसौटी हो सकती हैं। किन्तु एकमात्र मार्ग शायद मुझे यह कहना चाहिए कि पहला और सर्वोच्च मार्ग इस प्रकार की स्थिति को सुधार करने का यह है कि प्रत्येक वही करे जो योग्य हो। एक अकेली आत्मा तमाम महाद्वीप के लिए आध्यात्मिक

उत्थान का कारण बन सकती है। अब क्योंकि आप देख चुके हैं और अपने जीवन के एक बहुत बड़े दोष को सुधार चुके हैं, और अब क्योंकि आप और अधिक स्पष्ट रूप में यह देख सकते हैं कि आपके अपने समाज में क्या कमी है, ऐसी कोई बात नहीं है जो आपको उठ खड़े होने और एक ऐसा उदाहरण देने से रोक सके, ऐसा प्रेम और सेवाभावना को प्रदर्शित करने से रोक सके कि जो आपके साथी बहाइयों के हृदयों को प्रकाश से भर दें।"

"वह आप से अनुरोध करते हैं कि आप गहराई के साथ शिक्षाओं का अध्ययन करें, दूसरों को ज्ञान दें, उन बहाइयों के साथ, जो ऐसा करने के लिए उत्सुक हैं, अपने धर्म की गहन शिक्षाओं का अध्ययन करें और अपने दृष्टान्त, प्रयास और प्रार्थना द्वारा परिवर्तन लावें।"(30 सितम्बर, 1949)

"बहाउल्लाह के प्रति यथार्थ प्रेम की भावना के बिना, उन प्रभु रूप के धर्म और उसके संस्थानों के प्रति वास्तविक प्रेम के बिना, और उसके अनुयायियों के बीच एक दूसरे के लिए सच्चे प्रेम के बिना, प्रभु का धर्म वास्तविक रूप में बड़ी संख्या में लोगों को कभी नहीं खींच सकता क्योंकि उपदेश और नियम ही वे चीजें नहीं हैं जो संसार को चाहिए, उसे जो चाहिए वह है प्रेम और कर्म।" (25 अक्टूबर, 1949)

"फिर भी अत्यन्त तीव्र भावनाओं के साथ वह यह अनुभव करते हैं कि यदि.....की ऐसी स्थिति है जैसा कि तुम्हारा पत्र सम्बोधित करता प्रतीत होता है, तो निश्चय ही वह अपने मामलों को गलत रूप में नियोजित कर रही है। इसका अर्थ सभा से नहीं है, इसका अर्थ या आशय है प्रत्येक बहाई से। बहाई प्रेम कहां है? एकता और समानता को प्राथमिकता देने की यह बात ही कहां है? प्रेम और समानता की

प्राप्ति के निमित्त अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों की बलि दे देने की वह उमंग इसमें कहां है ? वह कौन सी चीज है जो बहाइयों को यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि जब वे आध्यात्मिक नियमों की कुर्बानी दे देंगे तो भला प्रशासनिक नियम कैसे कार्यान्वित हो सकेंगे ?"

"वह आपसे आग्रह करते हैं कि आप भरपूर कोशिश करें कि.........से बहाई इस प्रकार की अनिष्टकारी अभिव्यक्तियों को, जैसे कि 'मौलिक', 'रूढिवादी', 'प्रगतिवादी' 'प्रभु धर्म के शत्रु', 'शिक्षाओं को सपाट करना' आदि एक ओर रख दें। एक क्षण के लिए यदि वे रुकें और मनन करें कि 'बाब' और शहीदों ने किस उद्देश्य के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी, और 'बहाउल्लाह' एवं प्रिय स्वामी ने इतनी अधिक यातनाएं क्यों वहन की थीं तो वे ऐसी अभिव्यक्तियों और आरोपों को एक दूसरे के बारे में बोलते समय अपने होंठों से बाहर कदापि नहीं निकलने देंगे। जब तक मित्रगण आपस में एक दूसरे से लड़ते रहेंगे, उनके प्रयत्नों को बरकत नहीं मिलेगी क्योंकि वे ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं।" (24 फरवरी, 1950)

"यह कहा जा सकता है कि बहाई दो प्रकार के हैं : वे जिनका धर्म बहाई है और वे जो प्रभु के धर्म के लिए जीते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि कोई दूसरी श्रेणी में हो सके, यदि कोई शौर्यवानों, शहीदों और संतों की अग्रपंक्ति में आ सके, तो ईश्वर की दृष्टि में यह अधिक प्रशंसनीय होगा।" (16 अप्रैल, 1950)

".......हमें एक ऐसे आध्यात्मिक स्तर पर पहुंचना ज़रूरी है जहां सबसे प्रथम ईश्वर आता है और जहां मानवीय वासनाएं हमें उस ईश्वर से मिलन करने में अशक्त हैं। हमेशा ही हम ऐसे लोगों को देखते हैं

जो या तो नफरत के दबाब से प्रेरित होकर या उस प्रबल लगाव के कारण जो किसी अन्य व्यक्ति के प्रति उनमें ही सिद्धान्त की बलि दे देते हैं या स्वयं को ईश्वर के दिव्य मार्ग से रोक लेते हैं।"

"हमें अवश्य ही ईश्वर से प्रेम करना चाहिए और इस अवस्था में सभी लोगों के लिए आम स्नेह रखना सम्भव है। हम प्रत्येक मानव प्राणी को केवल उसके लिए ही प्यार नहीं कर सकते, किन्तु मानवता के प्रति हमारी भावनाएं हमारे उस प्यार से दिशा प्राप्त करें जो उस परमात्मा के प्रति है जिसने सभी लोगों की सृष्टि की है।" (4 अक्टूबर, 1950)

"वह आपसे साग्रह कहना चाहते हैं कि एकता और प्रेम का वहां पर समाज के सभी सदस्यों के बीच विकास करने में आप जो कुछ और जितना भी कर सकते हैं करें, क्योंकि ऐसा लगता है कि इसी की उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता है।"

"प्रभु-धर्म की व्यवस्था कायम करने में अधिकतर नये बहाईगण इस यथार्थ को देख पाने से रह जाते हैं कि ये आध्यात्मिक सम्बन्ध कहीं अधिक आवश्यक और प्रारम्भिक हैं, इन नियमों और अधिनियमों की तुलना में, जिनके द्वारा समाज के हालातों की प्रकृति को नियन्त्रित किया जाना जरूरी है।" (4 अक्टूबर, 1950)

"प्रभु-धर्म के भीतर सर्वत्र ऐसा प्रतीत होता है, कि सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि मित्रों को, उनके मध्य प्रेम की आवश्यकता के बारे में अवगत कराया जाये। यह भी एक धारणा बन गई है कि प्रशासन कार्यविधि को सम्मिश्रित किया जाए, और उसे वैयक्तिक सम्बन्धों में प्रयुक्त करने की कोशिश की जाए जो कि एक

निष्फल-प्रयास है क्योंकि (आध्यात्मिक) सभा एक नवजात विद्यापीठ है और उससे यह आशा की जाती है कि वह दिव्य शिक्षाओं के अनुरूप समाज के मामलों की देखरेख करे। किन्तु व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम, एकता, क्षमाशीलता और पाप-क्षमा कर देने वाली दृष्टि के अधीन हैं। एक बार जब मित्रगण इस बात को समझ चुकेंगे तो वे इसे परस्पर भली-भांति निभायेंगे। किन्तु एक दूसरे के प्रति वे आध्यात्मिक सभा की भूमिका का खेल खेल रहे हैं और सभा से यह उम्मीद करते हैं कि वह एक व्यक्ति के रूप में उनसे व्यवहार करे।"

(5 अक्टूबर, 1950)

"बहाई समाज के भीतर जब टीका-टिप्पणी और कटु शब्दों का बोलबाला बढ़ जाये तो इसका उपचार इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है कि बीती हुई बात को बिसरा दिया जाये और सबसे कहा जाये कि वे नया पृष्ठ खोल लें, (बीती सोय विसार दे कर आगे की सोच) और ईश्वर के लिए तथा उसके धर्म के लिए उन विषयों का नाम लेने से दूर रहें जो गलतफहमी और विभेद ले आये थे। जितना ही अधिक मित्रगण आगे पीछे की बहस करेंगे और अपने दृष्टिकोण पर अड़े रहेंगे और हरएक इस बात पर जितना अड़ा रहेगा कि उसका ही विचार सही है, सारी बात इससे और अधिक बिगड़ जाएगी।"

"आज संसार जिस अवस्था में है, जब हम उसकी इस अवस्था का अवलोकन करते हैं, तो हमें अवश्य ही इन नितान्त तुच्छ आन्तरिक उपद्रवों को भूल जाना चाहिए और एक होकर मानवता की रक्षा के लिए दौड़ पड़ना चाहिए। आपको अपने साथी बहाइयों से यह अनुरोध करना चाहिए कि वे इस विचार बिन्दु का अनुसरण करें और एक शक्तिशाली प्रयास द्वारा आपको समर्थन दें ताकि प्रत्येक संकीर्ण

विचार और प्रत्येक कठोर शब्द का दमन किया जा सके, ताकि 'बहाउल्लाह' की दिव्य भावना का समस्त समाज में संचार हो और उन प्रभु रूप के प्रेम में और उनकी सेवा में सारे समाज को वह भावना एक कर दे।" (16 फरवरी, 1951)

"धर्म संरक्षक को विश्वास है कि दान-राशि, जो तुम्हारे उस मित्र के द्वारा, जो प्रभु के धर्म में पिछले कुछ समय से सक्रिय नहीं रही है, दी गई है, उसे सेवा में नवस्फूर्ति प्राप्त करने का सहायक साधन सिद्ध होगा। जो प्रभु-धर्म में सफलता लाए वह सेवा के अतिरिक्त अन्य दूसरी चीज नहीं है। सेवा ही वह चुम्बक है जो दिव्य आशीर्वादों को आकर्षित करती है। इस प्रकार, जब कोई व्यक्ति सक्रिय होता है तो उसे पवित्रात्मा से आशीर्वादों की प्राप्ति होती है। जब वे निठल्ले होकर बैठे रहते हैं तो पवित्र आत्मा को उनके जीवन में कहीं भी कोष-तत्व नहीं मिल पाता और इस प्रकार वे पवित्रात्मा के अरोग्यकर एवं स्फूर्तिदायिनी किरणों की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं।" (12 जुलाई, 1962)

"धर्म संरक्षक यह अनुभव करते हैं कि साथी-डाक्टरों से तथा दवा विक्रताओं से 'कमीशन' लेने की कुप्रथा के प्रति आपका रुख अत्यन्त प्रशंसनीय है। बहाई अपने आचरण व व्यवहार में जितने ही सत्यशील और श्रेष्ठ बनेंगे, उतना ही अधिक वे अपने धर्म, जिस पर उन्हें आस्था है, की आध्यात्मिक सशक्तता के द्वारा जनता को प्रभावित कर सकेंगे।" (27 अक्टूबर, 1953)

"इतनी गम्भीर और इतनी आग्रहपूर्ण, इस पर भी इतनी गरिमामय यह चुनौती, निश्चय ही मुख्य रूप से उस व्यक्तिगत अनुयायी के सम्मुख खड़ी है जिस पर अन्त में समूचे समाज का भाग्य

निर्भर है। यही है वह ताना-बाना जिस पर इस सारनी बनावट की किस्म और नमूना निर्भर है। वही है इस विशाल श्रृंखला की असंख्य कड़ियों में से एक के रूप में सार्थक होकर जो समस्त पृथ्वी के गोले को बांधे हुए है। वही है जो उन अनगिनत ईटों में से एक ईट की तरह सेवा दे रहा है, जो उस ढांचे को खड़ा रख रहा है और विश्व के प्रत्येक भाग में खड़े किये जा रहे प्रशासनिक भवन की सुदृढ़ता को सुनिश्चित बनाता है। उसके ऐसे समर्थन के बिना जिस समर्थन को तत्क्षण हार्दिक, सतत और उदार होना अपेक्षित है, उस संगठन, जिसका वह एक अंगभूत है और जो समाज के राष्ट्रीय प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है, के द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम और तैयार किया गया प्रत्येक आयोजन नितान्त विफलता की भेंट चढ़ जाएगा। स्वयं प्रभु के धर्म का विश्व केन्द्र, यदि उसे समाज का छोटा बड़ा प्रत्येक व्यक्ति ऐसे समर्थन से च्युत कर दे, तो वह भी शक्तिहीन हो जाएगा। यदि उस महान के द्वारा तैयार किये गये नमूने को सार्थक करने के लिए उपयुक्त साधन तंत्रों की कमी पड़ जाये तो स्वयं इस दिव्य योजना का महान रचयिता भी अपने उद्देश्य में परास्त हो जाएगा। स्वयं 'बहाउल्लाह' जो प्रभु-धर्म के दिव्य संस्थापक हैं, की संचार शक्ति प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से छिन जाएगी जो आगे चलकर अपनी भूमिका अदा करने में और उठ खड़े होने में असफल रहेगा।"

(28 जुलाई, 1954)

"जब कोई व्यक्ति बहाई बन जाता है, वास्तव में जो घटित होता हैं वह यह है कि चेतना का बीज मानवीय आत्मा में उगना आरम्भ हो जाता है। इस बीज के लिए यह जरूरी है कि पवित्र आत्मा की कृपा-दृष्टि के वरदानों से उसका सिंचन होता रहे। आत्मा के हित ये वरदान प्रार्थना, उपासना, सर्वश्रेष्ठ नाम के जप करने तथा प्रभु धर्म की सेवा करने पर

प्राप्त होते हैं। विषय का मूल तत्व यह है कि प्रभु-धर्म में सेवा उस हल के समान है जो बीज की बुआई के समय पार्थिव भूमि को जोतता है। यह आवश्यक है कि जमीन पर हल बहाया जाये, ताकि धरती संवद्‌र्धन प्राप्त करे और इस प्रकार बीज के समृद्धशाली, विकास को सुनिश्चित बनावे। ठीक इसी प्रकार हृदय की धरती पर हल चलने के बाद आत्मा का उत्थान और विकास आरम्भ होता है ताकि हृदय पवित्र आत्मा का एक स्थायी प्रतिबिम्ब बना रहे। इस प्रकार मानवीय आत्मा अत्यन्त वेगपूर्वक उगती और विकसित होती है।"

"स्वाभाविक है कि संकट और कठिनाई के अवसर भी आवेंगे, यहां तक कि कठोर चुनौतियां भी आएंगी, किन्तु यदि वह व्यक्ति दृढ़तापूर्वक दिव्य अवतार की ओर आशा करता है, उस महान की आध्यात्मिक शिक्षाओं का सावधानी पूर्वक अध्ययन-स्वाध्याय करता है और पवित्र आत्मा का आशीष प्राप्त कर लेता है तो 'वह पाएगा कि वास्तविक रूप में ये परीक्षाएं और कठिनाइयां ईश्वर के उन उपहारों के तुल्य हैं जिनके माध्यम से वह बढ़ने और विकसित होने की क्षमता प्राप्त कर सका है।"

"इसी दृष्टि से आपको सेवा के मार्ग पर अपनी स्वयं की कठिनाइयों को भी देखना चाहिए। आपकी आत्मा के लिए वे उन्नत्ति और परिपक्वता के साधन हैं। अचानक आपको यह महसूस होगा कि जो समस्याएं आपको परेशानी में डाले जा रही हैं उनमें से अनेकों पर आप विजय प्राप्त कर चुके हैं और तब आपको आश्चर्य भी होने लगेगा कि उनमें ऐसा क्या था कि वे आपके लिए कष्टकर निकले। व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना मन और हृदय प्रभु धर्म की सेवा में केन्द्रित कर दे, उन उच्चतम मापदण्डों के अनुसार जो

बहाउल्लाह द्वारा निर्धारित किये गए हैं। जब यह होगा तब सर्वपवित्र महापीठ से दिव्य दूतों के लश्कर व्यक्ति की सहायता के लिए उमड़ आएगें और शनैः शनैः प्रत्येक कठिनाई और प्रत्येक चुनौती पर विजय मिल जाएगी।" (6 अक्टूबर, 1954)

"मार्ग पथरीला है और परीक्षाएं अनेक हैं, किन्तु जैसा कि आपने कहा है, यदि मित्रगण 'बहाउल्लाह' की शिक्षाओं के अनुरूप जीवन यापन करना सीख लेंगे तो वे यह जान जाएगें कि वे निश्चय ही विचित्र एवं प्रबल विधियों द्वारा कार्य करती रहती हैं, और यह भी कि सहायता सदैव साथ रहती है, कि रुकावटों पर काबू पा लिया जाता है और अन्त में सफलता अवश्यम्भावी है।" (22 अप्रैल, 1956)

"स्वयं व्यक्ति ही उस कार्य की प्रकृति को आंके, अपनी अन्तरात्मा से मनन करे, प्रार्थना भाव से युक्त होकर उस कार्य के सभी पहलुओं पर मनन करे, उस प्राकृतिक निष्क्रियता का पौरुषपूर्वक सामना करने के लिए कटिबद्ध हो जाये जो उसके उठ खड़े होने की कोशिश को विफल बनाने पर तुली हुई है, वीरतापूर्वक तथा अविचलता के साथ उन क्षण-भंगुर और अवास्तविक मोहों को उतार कर फेंक दे जो उसे रोक रहे हों, अपने भीतर समाए हुए ऐसे सभी विचारों को उंडेलकर बाहर निकाल दे जो उसे अपने मार्ग पर बढ़ते रहने में बाधक हों, प्रभु-धर्म के उस दिव्य रचयिता के द्वारा दिये गये परामर्शों का पालन करे और उस महान, जो वास्तविक आदर्श है, के द्वारा निर्धारित की गई सीमा के भीतर रहते हुए, सब स्तरों के स्त्रियों एवं पुरूषों के साथ घुले मिले और उन विशिष्टताओं के माध्यम से जो उसके विचारों, शब्दों और उसके कर्मों की विशालता के परिचायक हैं, उन सबके अन्तः स्थलों तक पहुंचने की इच्छा रखे और सूझ-बूझ के साथ, प्रेमपूर्वक, प्रार्थनामयता पूर्वक और

उन लोगों को उस धर्म के लिए जीत लेने की वह निरन्तर आकांक्षा रखे जिसे उसने स्वयं अंगीकार कर लिया है।" (19 जुलाई, 1956)

"उन्हें वहां पर मित्रों में व्याप्त विभेद का समाचार पाकर अत्यन्त खेद हुआ, और वह यह महसूस करते हैं कि एकमात्र बुद्धिसंगत कार्यवाही का मार्ग है अनुयायियों का स्वयं को प्रभु-धर्म के प्रचार-प्रसार में जुटा देना और अपनी राष्ट्रीय संस्थान को सहयोग देना।"

"प्रायः ये परीक्षायें और कसौटियां, जिनसे होकर सभी बहाई समाजों को गुजरना अनिवार्य है, यद्यपि तत्क्षण भयानक दिखाई देती हैं, किन्तु बाद में विचार करने पर हम यह समझते जाते हैं कि वे मानवीय प्रकृति की निर्बलता अथवा गलत धारणाएं तथा विकास काल की पीड़ा मात्र के कारण हैं, जिसका अनुभव प्रत्येक बहाई समाज को करना ही पड़ेगा।" (25 नवम्बर, 1950)

"वे यह देखकर अत्यधिक प्रसन्न हैं कि अब्दुल-बहा की अत्यन्त ही उत्साहवद्र्धक शिक्षाओं में से एक को, जिसमें उन्होंने कहा है कि बाधा पहुंचाने वाले प्रत्येक पत्थर को हम प्रगति की सीढ़ी का पत्थर बनाने का यत्न करें, आप व्यवहार में ला रहे हैं। अपने अतीत काल के जीवन में आप सब अत्यन्त गम्भीर रूप में लड़खड़ाते रहे हैं, किन्तु अपने इस अनुभव से हतोत्साहित और पराजित न होते हुए आप उसे अपनी प्रकृति की शुद्धि का, अपने आचरण के सुधार का साधन बनाने में कृतसंकल्प हैं और स्वयं को अच्छे भावी नागरिक बनाने में प्रयत्नशील हैं। ईश्वर की दृष्टि में यह सचमुच एक आनन्दकर बात है।" (26 मार्च, 1957)

"विश्व के आज के हालातों को देखते हुए बहाइयों को बहाउल्लाह के अनुयायियों के रूप में दृढ़तापूर्वक एवं साहसपूर्वक उठ खड़ा होना

चाहिए और उनके नियमों का अनुसरण करने तथा उनके विश्व आदेश को स्थापित करने की आकांक्षा रखनी चाहिए। समझौता करने से हम न तो अपने धर्म को स्थापित कर पाएंगे, न उसके लिए दूसरों के हृदयों को ही जीत पाऐंगे, इसके लिए प्रायः महान व्यक्तिगत कुर्बानियां देनी अपेक्षित हैं, किन्तु हम यह जानते हैं कि जब हम योग्य कार्य करते होते हैं तो ईश्वर हमें उसे पूरा करने की शक्ति प्रदान करता है और हम उस महान की कृपाएं आकर्षित कर लेते हैं। ऐसे अवसरों पर हमें यह बोध प्राप्त होता है कि हम पर आ पड़ी विपत्ति निश्चय ही एक आशीर्वाद है।"

(7 मई, 1957)

"मित्रों के लिए यह बहाना बनाना पर्याप्त नहीं होगा कि उनके 'सबसे अच्छे शिक्षक' और उनके 'आदर्श अनुयायी' कमर कस कर पायनियर बनने के आहवान को पूरा कर चुके हैं। 'सबसे अच्छा शिक्षक' और 'आदर्श अनुयायी' किसी भी ऐसे बहाई से न तो कम है और न अधिक जो प्रभु-धर्म के कार्य के लिए आत्म समर्पण कर चुका हो और जो अपने ज्ञान तथा दिव्य शिक्षाओं के बारे में अपने बोध को गहन बना चुका हो, जो 'बहाउल्लाह' पर अपना विश्वास स्थापित कर चुका हो और जो अपनी समग्र योग्यता और क्षमता के साथ उन प्रभु-रूप की सेवार्थ उठ खड़ा हुआ हो। यह एक ऐसा द्वार है जिसके बारे में हमें आश्वासन दिया गया है कि ऐसे प्रत्येक भक्त के लिए जो खूब जोर से उसे खटखटाएगा उसके लिए वह हमेशा खुल जाएगा। जब इच्छा और अभिलाषा प्रबल होगी तो साधन मिल जाएगें और स्थानीय रूप से और अधिक कार्य करने के किसी नए गृह लक्ष्य के नगर में जाने या अन्तर्राष्ट्रीय पायनियरिंग क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए मार्ग खुल जाएगा।"

"आपकी सभा को न केवल अपेक्षित उत्साहवद्र्धन और नेतृत्व उपलब्ध कराए रहना चाहिए और न केवल मित्रों को उठ खड़े होने और अपनी भूमिका निभाने की प्रेरणा देते रहना चाहिए, बल्कि स्थानीय आध्यात्मिक सभाओं का इस प्रकार अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार, मित्रों को आगे बढ़ने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उठ खड़े होने हेतु हर संभव सहायता उपलब्ध करानी चाहिए। प्रत्येक बहाई को भी इसी प्रकार यह अनुभव करना चाहिए कि प्रभु के धर्म के प्रति यह इस वर्तमान काल में उसका एक व्यक्तिगत कर्तव्य तथा उसका एक बहुत बड़ा सौभाग्य है कि वह स्वयं से यह पूछे कि अब से आरम्भ होने वाले आगामी 6 वर्षों के अन्तर्गत विश्व क्रूसेड के लक्ष्यों को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने की दिशा में वह क्या योगदान दे सकता है। बहाई ईश्वर का खमीर हैं, जिन्हें अपने देश के लोंदे को उठाना है।" (21 सितम्बर, 1957)